लाटरी

प्रेमचन्द

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 20 रुपये
पहला संस्करण 2005
पुनर्मुद्रण : अगस्त 2012

प्रकाशक
अनुराग ट्रस्ट
डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

लॉटरी

1

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये, तो मेरे दोस्त, विक्रम के पिता, चचा, अम्माँ और भाई, सभी ने एक-एक टिकट ख़रीद लिया। कौन जाने, किसकी तक़दीर ज़ोर करे? किसी के नाम आये, रुपया रहेगा तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रुपये आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता है? बहुत होगा, दस-पाँच हज़ार उसे दे देंगे। इतने रुपयों में उसका क्या होगा? उसकी ज़िन्दगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे सम्पूर्ण जगत की यात्रा करनी थी,

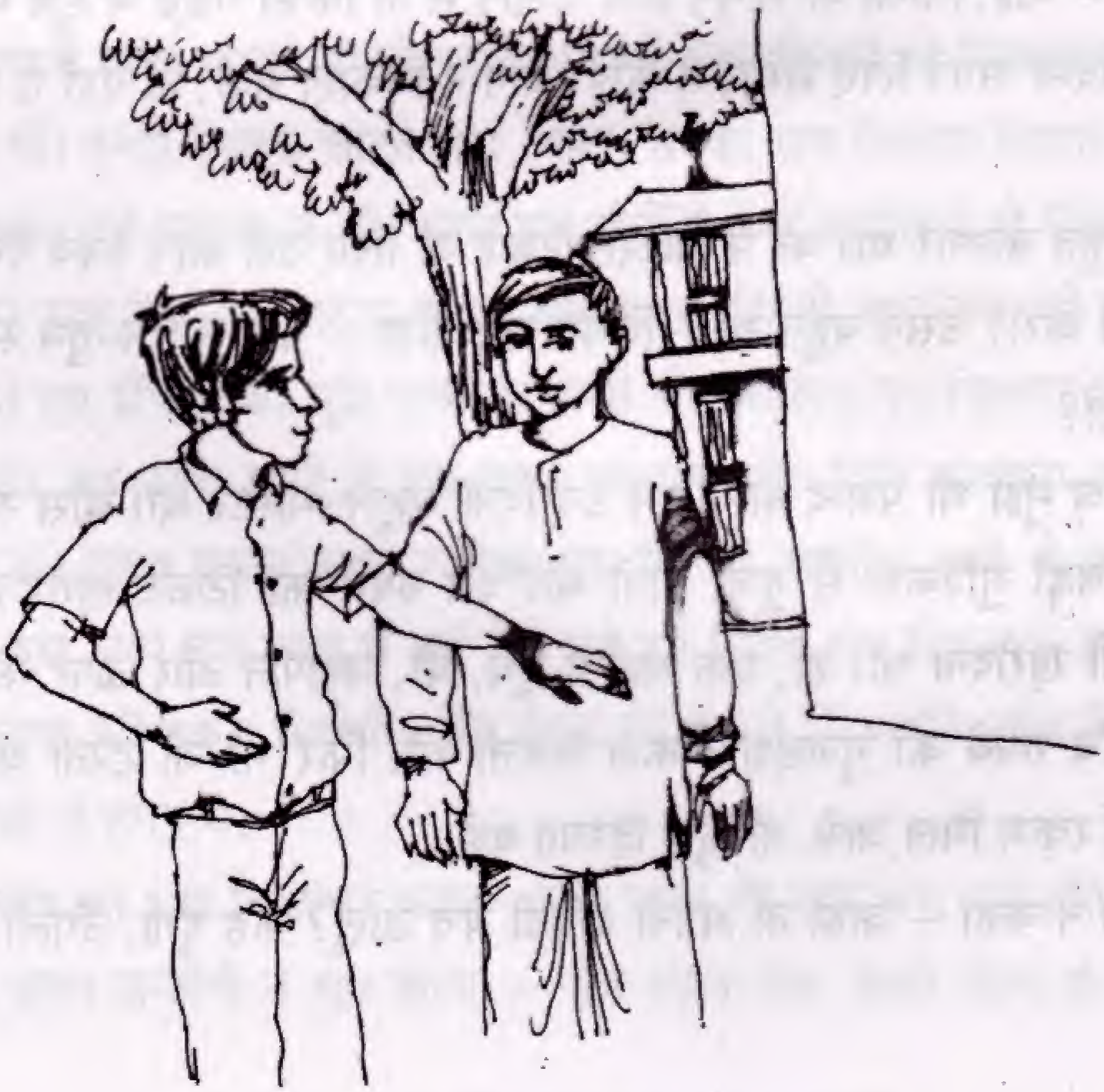

एक-एक कोने की। पेरू और ब्राज़ील और टिम्बकटू और होनोलूलू, ये सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने-दो-महीने उड़कर लौट आने वालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा का एक वृहद ग्रन्थ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनियाभर की उत्तम रचनाएँ जमा की जायें। पुस्तकालय के लिए वह दो लाख तक ख़र्च करने को तैयार था, बँगला, कार और फ़र्नीचर तो मामूली बातें थीं। पिता या चचा के नाम रुपये आये, तो पाँच हज़ार से ज़्यादा का डौल नहीं, अम्माँ के नाम आये, तो बीस हज़ार मिल जायेंगे; लेकिन भाई साहब के नाम आ गये, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह आत्माभिमानी था। घरवालों से ख़ैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था – भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाये?

वह बहुत बेक़रार था। घर में लॉटरी-टिकट के लिए उसे कौन रुपये देगा और वह माँगे भी तो कैसे? उसने बहुत सोच-विचार कर कहा – क्यों न हम-तुम साझे में एक टिकट ले लें?

तजवीज़ मुझे भी पसन्द आयी। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रुपये मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुज़र होती थी। दस रुपये का टिकट ख़रीदना मेरे लिए सुफ़ेद हाथी ख़रीदना था। हाँ, एक महीना दूध, घी, जलपान और ऊपर के सारे ख़र्च तोड़कर पाँच रुपये की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी जी डरता था। कहीं से कोई बलाई रक़म मिल जाये, तो कुछ हिम्मत बढ़े।

विक्रम ने कहा – कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रुपये से कम न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था; अगर कुछ ख़र्च किये बिना ही टिकट में आधा-साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है?

सहसा विक्रम फिर बोला – लेकिन भई, तुम्हें नक़द देने पड़ेंगे। मैं पाँच रुपये नक़द लिये बग़ैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला – नहीं दोस्त, यह बुरी बात है, चोरी खुल जायेगी, तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आख़िर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकेण्ड हैण्ड किताबों की दूकान पर बेच डाली जायें और उस रुपये से टिकट लिया जाये। किताबों से ज़्यादा बेज़रूरत हमारे पास और कोई चीज़ न थी। हम दोनों साथ ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होंने डिग्रियाँ लीं, अपनी आँखें फोड़ीं और घर के रुपये बरबाद किये, वह भी जूतियाँ चटका रहे थे, हमने वही हाल्ट कर दिया। मैं स्कूल मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्ती करने लगा? हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना, चाटा; उनका सत्त निकाल लिया। अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूड़ेख़ाने से निकाला और झाड़-पोंछकर एक बड़ा-सा गट्ठर बाँधा। मास्टर था, किसी बुकसेलर की दूकान पर किताब बेचते हुए झेंपता था। मुझे सभी पहचानते थे; इसलिए यह ख़िदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घण्टे में दस रुपये का एक नोट लिये उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रुपये से कम की न थीं; पर यह दस रुपये उस वक़्त में हमें जैसे पड़े हुए मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रक़म मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आयेंगे, पाँच विक्रम के। हम अपने इसी में मगन थे।

मैंने सन्तोष का भाव दिखाकर कहा – पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी!

विक्रम इतना सन्तोषी न था। बोला – पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक़्त

पाँच सौ भी बहुत हैं भाई, मगर ज़िन्दगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरी यात्रा वाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय ग़ायब हो गया।

मैंने आपत्ति की – आख़िर यात्रा में तुम दो लाख से ज़्यादा तो न ख़र्च करोगे।?

'जी नहीं, उसका बजट है साढ़े तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हज़ार रुपये साल ही तो हुए?'

'चार हज़ार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हज़ार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।'

विक्रम ने गर्म होकर कहा – मैं शान से रहना चाहता हूँ; भिखारियों की तरह नहीं।

'दो हज़ार में भी तुम शान से रह सकते हो।'

'जब तक आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न दे देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई ज़रूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो?'

'मैं तो बेजोड़ ही बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हें अख़्तियार है, लेकिन मेरे रुपये में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी ज़रूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफ़ी जायदाद है। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनों का विवाह है, दो भाइयों की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रुपये सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा, कि मेरे बाद भी कोई इस रक़म में हाथ न लगा सके।'

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा – हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय है। ख़ैर, मैं ही तकलीफ़ उठा लूँगा; लेकिन बैंक के सूद की दर तो बहुत गिर गयी है।

हमने कई बैंकों में सूद की दर देखी, अस्थायी कोष की भी; सेविंग बैंक की भी।

बेशक दर बहुत कम थी। दो-ढाई रुपये सैकड़े ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाये? विक्रम भी अभी यात्रा पर न जायेगा। दोनों के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जायेगा, तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन में सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रोब-दाब भी रहेगा। हाँ, जब तक अच्छी जमानत न हो, किसी को रुपया न देना चाहिए; चाहे असामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रुपये दे ही क्यों? जायदाद रेहन लिखाकर रुपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

यह मंज़िल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा। मैंने कोई उपाय न देखकर मंजूर कर लिया और बिना किसी लिखा-पढ़ी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई।

2

एक-एक करके इन्तज़ार के दिन काटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेण्डर पर जातीं। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठकर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट ख़रीदने का रहस्य छिपाये रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक़्त लोगों को कितना विस्मय होगा! उस दृश्य का नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातों-बातों में विवाह का ज़िक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा – भई, शादी-वादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिन्ता और हाय-हाय। पत्नी की नाच बरदारी में ही बहुत से रुपये उड़ जायेंगे।

मैंने इसका विरोध किया – हाँ, यह तो ठीक है; लेकिन जब तक जीवन के

सुख-दुःख का कोई साथी न हो; जीवन का आनन्द ही क्या? मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ; साथी ऐसा चाहता हूँ जो अन्त तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

विक्रम ज़रूरत से ज़्यादा तुनुकमिज़ाजी से बोला – ख़ैर, अपना-अपना दृष्टिकोण है। आपको बीवी मुबारक़ और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना तथा बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक़। बन्दा तो आज़ाद रहेगा, अपने मज़े से चाहा और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर आ गये। यह नहीं कि हर वक़्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। ज़रा-सी देर हुई घर आने में और फ़ौरन जवाब तलब हुआ – कहाँ थे अब तक? आप कहीं बाहर निकले और फ़ौरन सवाल हुआ – कहाँ जाते हो? और जो कहीं दुर्भाग्य से पत्नीजी भी साथ हो गयीं, तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। न भैया, मुझे आपसे ज़रा भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को ज़रा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े चले जा रहे हैं होमियोपैथिक डॉक्टर के पास। ज़रा उम्र खिसकी और लौण्डे मनाने लगे कि कब आप प्रस्थान करें और वह गुलछर्रे उड़ायें। मौक़ा मिला तो आपको ज़हर खिला दिया और मशहूर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गयी। वह विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढ़ती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख़। इतने धमाके से द्वार खोला कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

विक्रम ने बिगड़कर कहा – तू बड़ी शैतान है कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ?

कुन्ती ने खुफ़िया पुलिस की तरह कमरे में नज़र दौड़ाकर कहा – तुम लोग हरदम यहाँ किवाड़ बन्द किये बैठे क्या बातें किया करते हो? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने; कोई जादू मन्तर जगाते होगे!

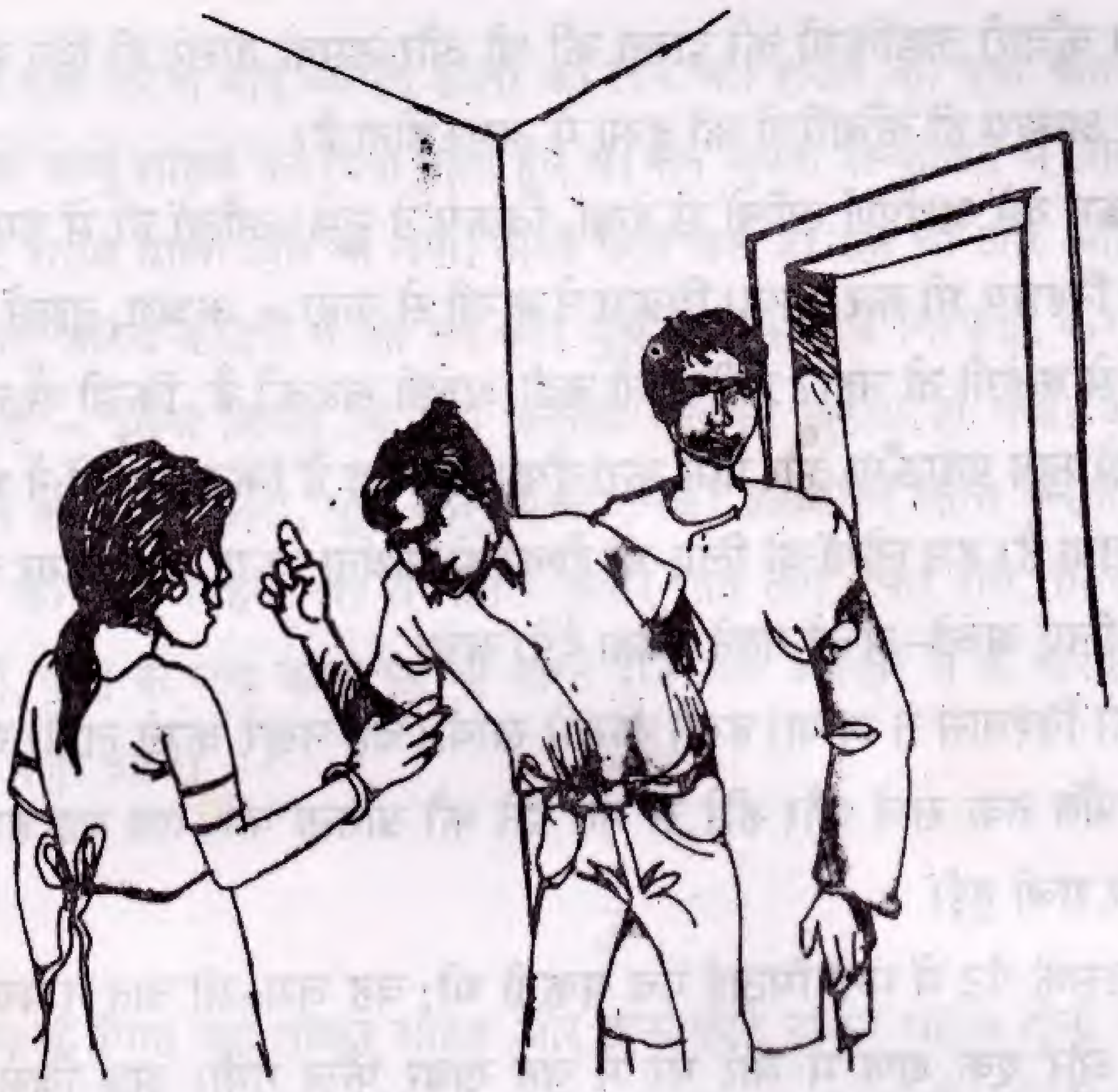

विक्रम ने उसकी गरदन पकड़कर हिलाते हुए कहा – हाँ एक मन्तर जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज़ गिनकर पाँच हज़ार हण्टर जमाये सड़ासड़।

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली – मैं ऐसे दूल्हे से ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दोने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। ज़रा भी चीं-चपड़ करेगा, तो कान गर्म कर दूँगी। अम्माँ को लॉटरी के रुपये मिलेंगे, तो पचास हज़ार मुझे दे दें। बस, चैन करूँगी। मैं दोनों वक़्त ठाकुरजी से अम्माँ के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती हैं, कुँवारी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्माँ को ज़रूर रुपये मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादों का महीना आ गया था; मगर पानी की बूँद नहीं। सब लोगों ने चन्दा करके

गाँव की सब कुँवारी लड़कियों की दावत की थी और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही कुँवारियों की दुआ में असर होता है।

मैंने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा – अच्छा, तुझसे एक बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं? नहीं तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी। मैं अबकी तुझे ख़ूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लॉटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर। अगर हमें रुपये मिले, तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच!

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने क़समें खायीं। वह नख़रे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने पर राजी हुई।

लेकिन उसके पेट में मनों मिठाई पच सकती थी; वह ज़रा-सी बात न पची। सीधा अन्दर भागी और एक क्षण में सारे घर में वह ख़बर फैल गयी। अब जिसे देखिये, विक्रम को डाँट रहा है, अम्माँ भी, चचा भी, पिता भी – केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी भाव से, कौन जाने – बैठे-बैठे तुम्हें हिमाक़त ही सूझती है। रुपये लेकर पानी में फेंक दिये। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या ज़रूरत थी? क्या तुम्हें उसमें से कुछ न मिलते? और तुम भी मास्टर साहब, बिलकुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, उसे और चौपट किये डालते हो।

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठकर एक-दो जून खाना न खाये, तो आफ़त ही आ जाये। मुझ पर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहबत में लड़का बिगड़ा जाता है।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थी। मुझे अपने

बचपन की एक घटना याद आयी। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवायी गयी थी। मेरे मामूँ साहब उन दिनों आये हुए थे। मैंने चुपके से कोठरी में जाकर गिलास में एक घूँट शराब ढाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थी, कि मामूँ साहब कोठरी में आ गये और मुझे मानो सेंध में गिरफ़्तार कर लिया और इतना बिगड़े – इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया। अम्माँ ने भी डाँटा, पिता जी ने भी डाँटा, मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी; और दोपहर ही को मामूँ साहब नशे में पागल होकर गाने लगे, फिर रोये, फिर अम्माँ को गालियाँ दीं, दादा के मना करने पर भी मारने दौड़े और आख़िर में कै करके ज़मीन पर बेसुध पड़े नज़र आये।

3

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब और ताऊ छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ाने वाले, पूरे नास्तिक; मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान् और ईश्वर भक्त हो गये थे। बड़े ठाकुर साहब प्रातःकाल गंगा-स्नान करने जाते और मन्दिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चन्दन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम-नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही दोनों भाई अपने ठाकुरद्वारे में जा बैठते और आधी रात तक भागवत की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों तथा कुटियों की ख़ाक छानते और माताजी को तो भोर से आधी रात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। इस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक़ था; पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह

भक्ति-निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पण्डितों से प्रश्न करके अपने को कभी दुःखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लॉटरी का दिवस समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण सन्देह होने लगा कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इन्कार कर दे, तो मैं क्या करूँगा। साफ़ इन्कार कर जाये कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नीयत पर है। उसकी नीयत ज़रा भी डावाँडोल हुई कि काम-तमाम। कहीं फ़रियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता। अब अगर कुछ कहूँ भी तो कुछ लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फ़ितूर आ गया है तो वह अभी से इन्कार कर देगा; अगर नहीं आया है, तो इस सन्देह से उसे मर्मान्तक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं है; मगर भाई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रुपये नहीं मिले हैं। इस वक़्त ईमानदार बनने में क्या ख़र्च होता है? परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रुपये हाथ में होंगे। मैंने अपने अन्तःकरण को टटोला – अगर टिकट मेरे नाम का होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रुपये बिना कान-पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता? कौन कह सकता है; मगर अधिक सम्भव यही था कि मैं हीले-हवाले करता, कहता – तुमने मुझे पाँच रुपये उधार दिये थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो और क्या करोगे; मगर नहीं मुझसे इतनी बद-नीयती न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अख़बार देख रहे थे कि सहसा बिक्रम ने कहा – कहीं हमारा टिकट निकल आये, तो मुझे अफ़सोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया!

वह सरल भाव से मुस्कराया, मगर यह थी उसके आत्मा की झलक जिसे वह

विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंककर कहा – सच! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफ़सोस हो सकता है?

'लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है?'

'इससे क्या।'

'अच्छा मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इंकार कर जाऊँ?'

मेरा ख़ून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

'मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता था।'

'मगर है बहुत सम्भव। पाँच लाख। सोचो! दिमाग़ चकरा जाता है!'

'तो भाई, अभी से कुशल है, लिखा-पढ़ी कर लो! यह संशय रहे ही क्यों?'

विक्रम ने हँसकर कहा – तुम बड़े शक्की हो यार! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता है? पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ भी हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इस आश्वासन पर बिल्कुल विश्वास न आया। मन में एक संशय बैठ गया।

मैंने कहा – यह तो मैं जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, लेकिन लिखा-पढ़ी कर लेने से क्या हरज है।

'फ़ज़ूल है।'

'फ़ज़ूल ही सही।'

'तो पक्के काग़ज़ पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट-फ़ीस ही साढ़े सात हज़ार हो जायेगी। किस भ्रम में हैं आप?'

मैंने सोचा, बला से सादी लिखा-पढ़ी के बल पर कोई क़ानूनी कार्रवाई न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, इन्हें जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आयेगा और दुनिया में बदनामी का भय न हो, तो

आदमी न जाने क्या करे। अपमान का भय क़ानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता। बोला – मुझे सादे काग़ज़ पर ही विश्वास आ जायेगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा – जिस काग़ज़ का कोई क़ानूनी महत्त्व नहीं, उसे लिखकर क्या समय नष्ट करें?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा काग़ज़ लिखने में क्या बाधा हो सकती है?बिगड़कर कहा – तुम्हारी नीयत तो अभी से ख़राब हो गयी।

उसने निर्लज्जता से कहा – तो क्या तुम साबित करना चाहते हो कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती?

'मेरी नीयत इतनी कमज़ोर नहीं है?'

'रहने भी दो। बड़ी नीयतवाले! अच्छे-अच्छे को देखा है!'

'तुम्हें इसी वक़्त लेखाबद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रुपये हज़म कर जाओगे?'

'किसके रुपये और कैसे रुपये?'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अन्त न हो जायेगा, बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होगा।'

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवानख़ाने में झड़प की आवाज़ सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया। यहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाइयों में हो सकती है। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमें कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लिए क़ानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को

आश्चर्य हुआ दीवानख़ाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठकर खड़े हो गये थे, एक-एक क़दम आगे भी बढ़ आये थे, आँखें लाल, मुख विकृत, त्योरियाँ चढ़ी हुईं, मुट्ठियाँ बँधी हुईं। मालूम होता था, बस हाथापाई हुआ ही चाहता है।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा – सम्मिलित परिवार में जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आये, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर एक क़दम और आगे बढ़ाया – हरगिज़ नहीं, अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सज़ा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

'इसका फ़ैसला अदालत से होगा।'

'शौक़ से अदालत जाइये। अगर मेरे लड़के, मेरी बीवी या मेरे नाम लॉटरी निकली, तो आपका उससे कोई सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे आपके नाम लॉटरी निकले; तो मुझसे, मेरी बीवी से या मेरे लड़के से उसका कोई सम्बन्ध न होगा।'

'अगर मैं जानता कि आपकी ऐसी नीयत है, तो मैं भी बीवी-बच्चों के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी ग़लती है।'

'इसलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहिए था। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल को दस-पाँच हज़ार रेस में हार आयें, तो खानदान उसका ज़िम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक़ दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते?'

'आप न ब्रह्मा हैं, न ईश्वर और न कोई महात्मा।'

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्लयुद्ध हुआ चाहता

है, तो दौड़ी हुई बाहर आयीं और दोनों को समझाने लगीं।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा – आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइये, जो चार-चार टिकट लिये हुए बैठे हैं। मेरे पास क्या है, एक टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रुपये मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाये, तो लज्जा और दुःख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हुए कहा – अच्छा मेरे रुपये में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो।

बड़े ठाकुर ने बीवी की ज़बान पकड़ी – क्यों आधे ले लेंगे? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी उन्हें पाँचवें हिस्से से ज़्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता है?– न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा – सारी दुनिया का क़ानून आप ही तो जानते हैं।

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है?'

'यह वकालत निकल जायेगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लन्दन का!'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए, कपड़ों पर ताज़ा ख़ून के दाग़ लगाये, प्रसन्न-मुख आकर एक आरामकुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबराकर पूछा – यह तुम्हारी क्या हालत है जी? ऐं, यह चोट कैसे लगी? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गयी।

प्रकाश ने कुर्सी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुसकराकर बोले – जी, कोई बात नहीं, ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

'कैसे कहते हो कि चोट नहीं लगी? सारा हाथ और सिर सूज गया है। कपड़े ख़ून

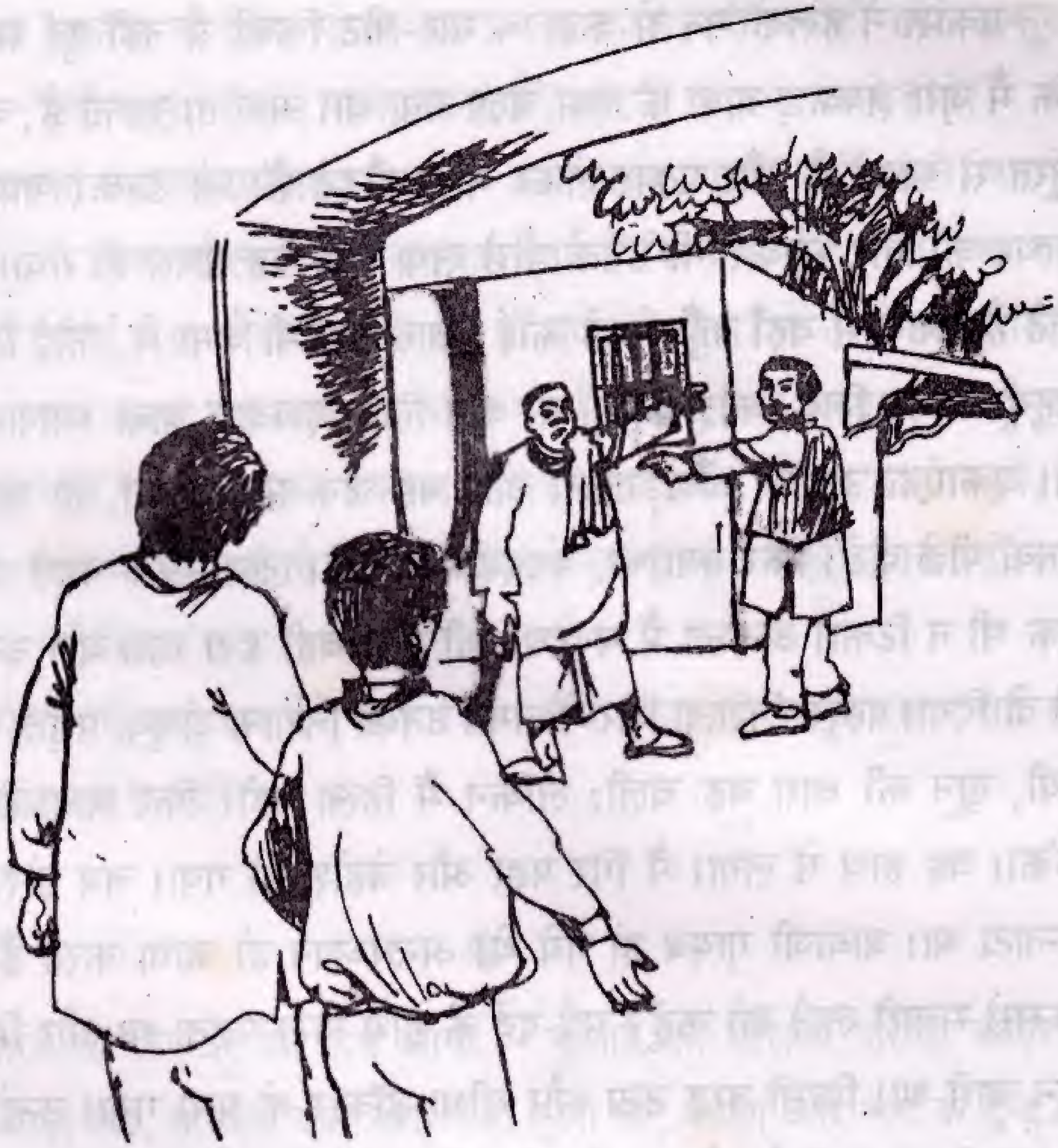

से तर। यह मुआमला क्या है? कोई मोटर दुर्घटना तो नहीं हो गयी?'

'बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायेगी। घबराने की कोई बात नहीं।'

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण, शान्त मुसकान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर पूछा – लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ।

प्रकाश ने हलके मन से कहा – मार-पीट किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं ज़रा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोट खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो कोई पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिये, कोई बहुमूल्य भेंट लिये, कोई कपड़ों के थान लिये। झक्कड़ बाबा ध्यानावस्था में बैठे हुए थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोलीं और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गयी। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो गये। एक भी न टिका। अकेला मैं घण्टेघर की तरह वहीं डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गयी, ख़ून की धारा बह चली; लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबाजी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी ग़ायब हो गये थे। अन्तरध्यान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ? मारे दर्द के हाथ फटा पड़ता था और सिर से अभी तक ख़ून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डॉक्टर के पास गया। उन्होंने देखकर कहा – हड्डी टूट गयी है और पट्टी बाँध दी; गर्म पानी से सेंकने को कहा है। शाम को फिर आयेंगे, मगर चोट लगी तो लगी; अब लॉटरी मेरे नाम आयी धरी है। यह निश्चय है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर सन्तोष की झलक दिखायी दी। फ़ौरन पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका भी मुख प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्योंही बड़े ठाकुर भोजन करने गये

और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबन्ध करने गयीं, त्योंही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा – क्या बहुत ज़ोर से पत्थर मारते हैं? ज़ोर से तो क्या मारते होंगे!

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा – अरे साहब, पत्थर नहीं मारते, बमगोले मारते हैं। देव-सा तो डील-डौल है और बलवान इतने हैं कि एक घूँसे में शेरों का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक ही पत्थर में टें हो जाये। कितने ही तो मर गये; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुक़दमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जायें, वह मारते ही जायेंगे; मगर रहस्य यही है कि आप जितने ज़्यादा चोटें खायेंगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।...

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

4

आख़िर भाग्य के निपटारे का दिन आया – जुलाई की बीसवीं तारीख़ कत्ल की रात! हम प्रातःकाल उठे, तो जैसे एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगा-स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मन्दिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा। अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपादृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमसे ज़्यादा तुम्हारी दया कौन डिज़र्व (deserve) करता है? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा – मैं डाकख़ाने जाता हूँ और हवा हो गया। ज़रा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लिये हुए घर में से निकले और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गयी थी। और दोनों ठाकुर भगवान् के चरणों में लौ लगाये हुए थे, सिर झुकाते, आँखें बन्द

किये हुए, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले – भगवान् तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी?

पुजारी ने समर्थन किया – हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो भगवान् क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर साहब ने सिर उठाया और पुजारी जी से बोले – क्यों पुजारी जी, भगवान् तो सर्व-शक्तिमान् हैं, अन्तर्यामी, सबके दिल का हाल जानते हैं।

पुजारी ने समर्थन किया – हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते तो सबके मन की बात कैसे जान जाते? शबरी का प्रेम देखकर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दोनों भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गायी और बड़े ठाकुर ने दो रुपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रुपये डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी से पूछा – तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारी जी?

पुजारी बोला – सरकार की फते है।

छोटे ठाकुर ने पूछा – और मेरी?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा – आप की भी फते है।

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मन्दिर से निकले –

'प्रभुजी, मैं तो आयो सरन तिहारे, हाँ प्रभु जी!'

एक मिनट में छोटे ठाकुर साहब भी मन्दिर से गाते हुए निकले –

'अब पत राखो मोरे दयानिधान तोरी गति लखि ना परे!'

मैं भी पीछे निकला और जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करना चाहा; उन्होंने थाल हटाकर कहा – आप रहने दीजिये, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गयी है?

मैं खिसियाकर डाकख़ाने की तरफ़ चला कि विक्रम मुसकराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गये। दोनों ठाकुर सामने ही खड़े थे। दोनों बाज़ की तरह झपटे। प्रकाश के थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल ज़मीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोंद में उठा लिया; मगर कोई उससे कुछ पूछता नहीं, सभी जय-जयकार की हॉक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर ने आकाश की ओर देखा – बोलो राजा रामचन्द्र की जय!

छोटे ठाकुर ने छलाँग मारी – बोलो हनुमानजी की जय!

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीख़ा – दुहाई झक्कड़ बाबा की!

विक्रम ने और ज़ोर से कहकहा मारा और फिर अलग खड़ा होकर बोला – जिसका नाम आया है, उससे एक लाख लूँगा! बोलो, है मंजूर?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा – पहले बता तो!

'ना! यों नहीं बताता।'

छोटे ठाकुर बिगड़े... महज़ बताने के लिए एक लाख? शाबाश!

प्रकाश ने भी त्योरी चढ़ायी – क्या डाकख़ाना हमने देखा नहीं है?

'अच्छा, तो अपना-अपना नाम सुनने के लिए तैयार हो जाओ।'

सभी लोग फ़ौजी-अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गये।

'होश-हवाश ठीक रखना!'

सभी पूर्ण सचेत हो गये।

'अच्छा, तो सुनिये कान खोलकर। इस शहर का सफ़ाया है। इस शहर का ही नहीं,

सम्पूर्ण भारत का सफ़ाया है। अमेरिका के एक हब्शी का नाम आ गया।'

बड़े ठाकुर झल्लाये – झूठ-झूठ, बिल्कुल झूठ!

छोटे ठाकुर ने पैंतरा बदला—कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या यों ही रही? वाह?

प्रकाश ने छाती ठोंककर कहा – यहाँ सिर मुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे हैं, दिल्लगी है!

इतने में और पचासों आदमी उधर से रोनी सूरत लिये निकले। बेचारे भी डाकख़ाने से अपनी क़िस्मत को रोते चले आ रहे थे। 'मार ले गया, अमेरिका का हब्शी! अभागा! पिशाच! दुष्ट!'

अब कैसे किसी को विश्वास न आता? बड़े ठाकुर झल्लाये हुए मन्दिर में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया – इसीलिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है। हराम का माल खाते हो और चैन करते हो।

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गयी। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये; मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा सोटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा – सभी ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे देवता क्या करें? किसी के हाथ से थोड़े ही छीन लायेंगे?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला – चलो, होटल से कुछ खा आयें, घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा – तुम डाकख़ाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे।

उसने कहा – जब मैंने डाकख़ाने के सामने हज़ारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गधेपन पर हँसी आयी। एक शहर में जब इतने आदमी हैं तो सारे हिन्दुस्तान में इसके हज़ार गुने से कम न होंगे और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज़्यादा हो जायेंगे। मैंने आशा का जो एक पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे एकबारगी इतना छोटा हुआ

कि राई बन गया, और मुझे हँसी आयी। जैसे कोई दानी पुरुष छटाँकभर अन्न हाथ में लेकर एक लाख आदमियों को नेवता दे बैठे – और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा है कि...

मैं भी हँसा – हाँ, बात तो यथार्थ में यही है और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े मरते थे; मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत ख़राब हुई थी कि नहीं?

विक्रम मुसकराकर बोला – अब क्या करोगे पूछकर? परदा ढँका रहने दो।

अनुराग ट्रस्ट